Volume: 4 Issue: 3 Pages: 24-27

साधारणीकरण एवं उसके समतुल्य अन्य पाशचात्य सिद्धांत

[*1] डॉ. शिव कुमार व्यास

[*1] सह प्राध्यापक, जी.एस. कॉलेज, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत।

Article Info.
E-ISSN: 2583-6528
Impact Factor (SJIF): 6.876
Peer Reviewed Journal
Available online:
www.alladvancejournal.com

Received: 12/Feb/2025
Accepted: 13/March/2025

***Corresponding Author**
डॉ. शिव कुमार व्यास
सह प्राध्यापक, जी.एस. कॉलेज, जबलपुर, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश:
साहित्य मनुष्य की ह्रदयगत् अनुभूतियों का प्रतिबिंब होता है। यही कारण है कि किसी कवि अथवा लेखक की रचना सह्रदय को अपनी और सहज ही आकृष्ट कर लेती है। साहित्य की विशिष्टता है कि वह सह्रदय को लोकोत्तर भावभूमि पर प्रतिष्ठित कर रस की अनुभूति कराता है, इस रसानुभूति की प्रक्रिया को संस्कृत, हिन्दी एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्रियों जैसे भरत मुनि, महलोल्लट, शंकुक, भट्टनायक वामन आचार्य शुक्ल, केशव प्रसाद मिश्र, आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी, नागेन्द्र, प्लेटों, अरस्तु, वदसवर्थ, लौजाइनस, इलियट, फ्रायड आदि प्रमुख है, जिन्होंने भिन्न-भिन्न स्थापनाओं के माध्यम से इस तथ्य् का समर्थन किया है कि रसानुभूति, अथवा अनंदानुभूति हेतु साधारणीकरण आवश्यक है, जिसमें प्रमाता का सामाजिक, आश्रय के साथ तादात्म्य स्थापित कर अपनत्व और परख के भावों से ऊपर उठ जाता है।

मुख्य शब्द: आस्वादन, आलंबन, प्रमाता, भावकत्व, संसर्गता, आच्छादन, तादात्म्य, संवेद्य, आनंदातिरेक, परिहार, उदात्तीकृत, एकांतिक, दिवास्वप्न, उच्छलन।

प्रस्तावना:

सृष्टि की रचना हुई और उसमें ईश्वर की सर्वोत्तम कृति के रूप में मानव ही अवतरण हुआ। मानव, जिसे इंद्रियों के ऐसे आभूषण प्राप्त हुए जो अवश्य ही उसकी सुंदरता में चार चाँद लगाते हैं। उसे वक्ष स्थल में धड़कता कोमल ह्रदय भी मिला और उसमें भावों की विशाल झील भी, जो प्रत्यक्ष को ग्रहण कर दो उज्जवल नेत्रों से दृश्य के रूप में या दो सुंदर कर्णों से श्रव्य के रूप में आलंबन की भंगिमा रूपी छोटी से छोटी कंकरी के छू जाने मात्र से अपने शांत संत से मग्न स्वरूप को लहरियों में बदल लेती है।

प्रकृति को मनुष्य ने जन्मते ही देखा है, या यों कहें कि अपने आपको उसी की सुरम्य गोद में सुख पाते देखा है। कभी बरवस मन सरोवर के किनारे खड़े वृक्षों को देखकर ध्यान लीन तपस्वियों का आभास देता है, कभी फलों से लदी शाखाओं को देखकर उनका झुकना किसी ज्ञानी सक्षम के विनम्र होने की बात बताता है, फिर उनके फलों को भी लाठी, पत्थर मारकर तोड़ा जाना यह भी अनुभव करवाता सा लगता है, कि संसार में विनम्रता और निश्छलता का ऐसा हश्र भी होता है। यह ह्रदय ही है जो इस सकल स्वरूप की ओर उसमें अंतर्निहित भावों की सहजता है, कभी ठहाके लगवाता है, तो कभी आँसुओं में डूबो देता है और कभी जड़ता शून्यता की अंध कंदरा में जा बैठता है। अर्थात् कभी सुख भाव तो कभी दुःख भाव या फिर भाव के पक्षाघात की स्थिति निर्मित हो जाती है। ह्रदयगत भावों के द्वारा ही स्वरूप बनता है, कभी स्वरूप का अवलोकन कर ह्रदयगत भावों का संश्लेषण होता है, जैसे रस्सी को सॉप समझकर बचना या उसे मारने का प्रयास करना अथवा सॉप को रस्सी मानकर निश्चित बने रहना।

ह्रदय में यह विलक्षणता तो पायी जाती है कि वह रस का आस्वादन कर सके लेकिन यह ठीक वैसा ही है कि लोहे पर पानी सोखने की कोशिश की जावे पर उस स्थिति में जब उसमें अति सूक्ष्म छिद्र हो। ह्रदय में भी उसी प्रकार भाव छिद्रों का होना आवश्यक हो जाता है, अन्यथा आस्वादन की वहाँ बात ही नहीं की जा सकती।

किसी नाटक को देखकर, या काव्य को पढ़, सुनकर सह्रदय द्रवित भावों में तत्संबंधी रस का अधिग्रहण कर, उसे घोलकर आत्मसात् कर लेता है, तथा स्वयं को उस पात्र के स्थान पर खड़ा पाता है। मनुष्य की इसी विचारशील जमीन की संवेदनशीलता उसे संसार के समस्त प्राणी जगत में श्रेष्ठता के आसन पर प्रतिष्ठित किये हुए हैं। हमारे ह्रदय में कुछ भाव ऐसे भी होते हैं जो सुसुप्तावस्था में बने रहते हैं, लेकिन समयानुसार उसी तरह जाग्रत भी हो जाते हैं जिस तरह जाल में कंपन होते ही मकड़ी सक्रिय हो जाती है।

साधारणीकरण

ऐसे मूलतः ह्रदय पक्ष से ही संबंधित है तथा साधारणीकरण रस से घनिष्ट रूप से संबंधित है। यह प्रश्न बार-बार मन वीणा को झंकृत

करता है कि आखिर काव्य में वर्णित राम, दुष्यंत आदि पात्रों के 'भाव' हमें क्यों प्रभावित करते हैं, क्यों और किस प्रकार से हमारे आस्वाद्य बन जाते हैं? तब इन सभी प्रश्नों का एक ही समाधान दृष्टिगोचर होता है, और यह है 'साधारीकरण'।

भरत के रस सूत्र (विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पतिः) के प्राथमिक व्याख्याकार भट्ट लोल्लट तथा शंकुक ने स्पष्टतया साधारणीकरण को वर्णित नहीं किया अपितु उसके कुछ निकट ही बने रहे। उनके अनुसार अनुकर्ता में अनुकार्य की प्रतीति होती है, जिससे सामाजिक को काव्य रस का आनंद अवश्य मिलता है। साधारणीकरण क्रमशः अन्यान्य विद्वानों का चिंतन विषय बनता गया।

भट्टनायक का साधारणीकरण

भट्ट नायक ने सहानुभूमि या संवेदना को ही साधारणीकरण का मुख्य प्रारूप विवेचित किया है। वे विभावादि का साधारणीकरण स्वीकार करते हैं, और साधारणीकरण को प्राण स्वरूप स्थान देते है। इस प्रकार कहें कि विभाविद ही साधारणीकृत होकर सामाजिक के सम्मुख उपस्थित होते हैं जबकि भाव किसी व्यक्ति विशेष से उठकर किसी सामान्य धर्म के रूप में उपस्थित हो एवं स्थायी भावों का भी ऐसा साधारण स्वरूप हो उठे कि वे भी सामाजिक या प्रमाता के भोगार्थ उपस्थित हो सके। क्योंकि 'व्यक्तिगत अपनत्व' की भावना को त्यागकर रजो व तमों गुणों से उठकर सात्विक क्षेत्र में पहुँचकर ही आलौकिक इत्यादि भावों का भोग संभव है। यथा -

''तस्मात्काव्ये दोषाभावगुणालंकारमयत्वेलक्षणेन

नाट्य चतुर्विधाभिनयरूपेण निविड़निज मोह संकटकारिणा विभावादिसाधारणीकरणात्मनाडमिधातों द्वितीयांशेन भावकत्व व्यापारेण भाव्यमानों रसोडनुभव स्मृत्यादि विलक्षणेन रजस्त मोडतुवेध वैचित्रयबलाद् दुरति विस्तार विकास लक्षणेन सत्वोद्रेक प्रकाशानंदमय निजसंविद्विश्रांति लक्षणेन परब्रह्मास्वादविधेन भोगेन परं भुज्यते।'' [1]

स्पष्ट है कि भट्ट नायक अभिधा व्यापार से अर्थ तत्व का, भाव कत्व से रस का तथा भोजकत्व से सह्रदय का संबंध स्वीकार करते हैं। काव्य का अर्थ बोध करने के पश्चात् भावकत्व व्यापार काव्यगत् पात्रों का अनुभावादि का साधारणीकरण होता है।

वामन झलकीकार के अनुसार काव्य में जिन राम और सीतादि पात्रों का उल्लेख होता है वे अपना 'रामत्व'तथा 'सीतात्व' त्यागकर सामान्य पुरूष पात्र तथा स्त्री पात्र के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं तथा उनके रति स्थायी भाव को हम साधारण रति स्थायी भाव रूप में ग्रहण करते हैं। यथा -

''काव्यर्थ बाधोत्तर मेव तत्राधेन भावकत्व व्यापारेण विभावादि रूप सीतादयो राम संबंधिनी रतिश्च सीतात्व रामत्व संबंधांरामपहाय सामान्यतः कामनीत्वरतित्वादिनैबनोपस्थाप्यते।'' [2]

'काव्यप्रकाश' के टीकाकार गोविंद ठाकुर ने भट्ट नायक के साधारणीकरण को व्यक्त करते हुए कहा कि - ''भावकत्व'' का अर्थ है साधारणीकरण। इस व्यापार के द्वारा विभावादि का और स्थायी भावों का साधारणीकरण होता है। साधारणीकरण का अर्थ है सीतादि विशेष पात्रों का कामिनी आदि सामान्य रूपों में उपस्थित होना। स्थायी भाव और अनुभाव के साधारणीकरण का आशय है विशिष्ट संबंधों से मुक्ति यथा -

''भावकत्वं साधारणीकरणम्। तेन् हि व्यापारेण विभावदयः स्थायी च साधारणी क्रियंते। साधारणीकरण चैतदेव यत्सीतादिविशेषाणां कामिनीत्वादिसामान्येनोपस्थितिः। स्थारूयनुभावादीनां च संबंधितविशेषानवच्छित्तत्वेन।'' [3]

अभिनवगुप्त का साधारणीकरण

अभिनव गुप्त ने साधारणीकरण विषयक अपने मत को रखते हुए कहा है - ''सर्वेषामनादि वासना चित्रीकृत चेत सां वासनासंवादात्।'' [4] उन्होंने इतिहास, कथा, श्रव्य काव्य तथा दृश्य काव्य आदि साधारणीकरण के चार भेद माने हैं। वैसे अभिनव गुप्त ने भट्ट नायक के विचारों की पृष्ठभूमि में ही अपने विचार व्यक्त किये हैं। अभिनव गुप्त मानते हैं कि साधारणीकरण केवल विभावादि का ही नहीं बल्कि स्थायी भाव का भी होता है। जबकि देशकाल का बंधन टूट जाता है, व्यक्ति संसर्गता से मुक्ति मिल जाती है, क्योंकि ऐसी सुख दुखादिहीन प्रतीति होने लगती है कि वह स्थायी भाव सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। इस प्रकार-

''तस्यां च यो मृगपोत कादिर्भाति तस्य विशेषरूपत्वाभावादभीत, इति, त्रास कस्यापारमार्थिकत्वाद, भयमेव परं देशकालाद्यनालिंगितम्।'' [5]

डॉ. गुलाब राय अभिनव गुप्त के साधारणीकरण का अर्थ - ''संबंधों का साधारणीकरण मानते हैं।'' [6] जिस प्रकार तर्कशास्त्र में धूप और अग्नि को साथ-साथ देखकर उस साहचर्य को देशकाल के संबंध से मुक्त करके सार्वकालिक बना लिया जाता है। उसी प्रकार साधारणीकरण में भय आदि संबंध व्यक्ति संबंध से मुक्त कर दिये जाते हैं तथा सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक बना दिये जाते हैं।'' [7]

आचार्य मम्मट ने अभिनव गुप्त के मत को स्वीकार करते हुए अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि 'अपरिमित प्रभातृत्व की अवस्था में न तो किसी प्रमुख या विशेष संबंध की स्वीकारोक्ति ही दी जा सकती है और न ही उसको समाप्त ही किया जा सकता है अर्थात् उनका साधारणीकरण के प्रति मत हमारे समक्ष इस रूप में आता है कि साधारणीकरण की स्थिति में हमें संबंध विशेष की स्वीकारोक्ति के प्रति अनिश्चय तथा उसके परिहार के प्रति भी अनिश्चय बना रहता है। अर्थात् विभावादि का साधारणीकरण होता है जिसका संबंध व्यक्ति विशेष से न होकर सर्वसाधारण के आस्वादन से होता है यथा -

''..... एवं तत्परिहार नियमनिर्णयोदपि नास्ती व्यंगी कार्यम्। अन्यथा 'तैत कस्यापि' इति संबध परिहार नियम निश्चये 'असंबंधिनोसत्वम्' ग्ग्ग् सामान्यतः 'कामनीयम्' इति कृत्वा कामनीत्वादिता प्रतीतैरिति इति विवरणे स्पष्टम्।'' [8] अर्थात् मम्मट ने साधारणीकृत विभावादि के संबंध में मेरे हैं, या शत्रु के हैं अथवा उदासीन के हैं ऐसी संबंध स्वीकृति नहीं रहती और न ही मेरे नहीं हैं, शत्रु के नहीं हैं या उदासीन के नहीं हैं, ऐसे संबंध की अस्वीकृति रहती है, इस विचार को व्यक्त किया है।

आचार्य विश्वनाथ का साधारणीकरण

संस्कृत के परवर्ती विद्वानों में आचार्य विश्वनाथ ने साधारणीकरण के विषय में अपने मत को व्यक्त करते हुए कहा है कि स्थायी भाव एवं विभावादि का साधारणीकरण होता है तथा साथ ही उन्होंने पाठक का आश्रय के साथ तादात्म्य भी स्वीकार किया है यथा -

व्यापारोडस्ति विभावदेर्नाम्ना साधारणीकृतिः।
प्रभाता तद्भेदेन स्वात्मानं प्रतिपद्यते।।'' [9]

इसी प्रकार रस की अनुभूति के समय यह भाव कि 'मेरा है, मेरा नहीं है, अन्य का है, अन्य का नहीं है, नहीं होता, यथा -

''परत्य न परस्येति ममेति न ममेति च।
तदास्वादे विभावादेः परिच्छेदो न विद्यते।।'' [10]

संक्षेप में विश्वनाथ आलबंन, पाठक और आश्रय सभी का साधारणीकरण मानते है।

पं. राज जगन्नाथ का साधारणीकरण

इसी मत मतान्तर के क्रम को आगे बढ़ाते हुए अगले सोपान पर पं. राज जगन्नाथ के साधारणीकरण विषयक विचार है। वे 'भावना दोष' अर्थात् 'भ्रम' को अपने मत के मूल में प्रतिष्ठित करते हैं। उनका मत है कि जब हम शंकुतला, दुष्यंत्यादि पात्रों व उनके विभावादि के ज्ञान को नाट्य या काव्यादि के द्वारा ग्रहण करते हैं तो हम उसमें (दुष्यंत में) स्वयं को लीन पाते है और अपने ह्रदय में हमें स्वयं को शकुंतला का प्रेमी समझने में कोई कठिनता नहीं होती। सामाजिक के व्यक्तित्व पर आश्रय के आच्छादन का प्रमुख कारण सामाजिक द्वारा निरंतर दुष्यत्यादि के विषय में चिंतन मनन करना ही है यद्यपि हमें शकुंतला से वास्तविक रूप में रति नहीं होती तथापि उसका भ्रम हो जाता है। यथा -

''काव्य नाट्ये च कविना नटेन च प्रकाशितेषु विभावादिषु,

व्यंजन व्यापारेण दुष्यांतादौ शकुंतलादिरतों गृहीतायामनन्तर च सह्रदयतोल्लासितस्य भावना विशेष रूपस्य दोषस्य, महिम्ना, कल्पित दुष्यंतत्वावच्छादिते स्वात्मन्यज्ञानावच्छिन्ने भुक्तिकाशकल इव रजतखण्डः ग्ग्ग् साक्षिभास्य शकुंतलादि विषयक रत्यादि रेव रसः।''[11]

हिन्दी के आचार्य एवं साधारणीकरण

संस्कृत के आचार्यों द्वारा 'साधारणीकरण' के विषय में दिये गये मतों का अवलोकन करने के पश्चात् स्वाभाविक रूप से जिज्ञासा बलवती होती है कि आखिर हिन्दी साहित्याकाश के नक्षत्रों ने कहाँ तक इसे प्रकाशित किया है, हिन्दी के जिन विद्वानों ने साधारणीकरण के स्वरूप निरूपण में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है उनके मतों का हम क्रमशः निम्न प्रकार अवलोकन करेंगे -

आचार्य शुक्ल का साधारणीकरण

हिन्दी जगत में 'साधारणीकरण' विषय पर सर्वप्रथम चिंतन का श्रेय आचार्य शुक्ल को प्राप्त है आपने 'साधारणीकरण एवं व्यक्ति वैचित्र्यवाद' नामक निबंध ही इस विषय पर लिखा है। संक्षेप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की साधारणीकरण विषयक मान्यता को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है - ''काव्य का विषय सदा विशेष होता है सामान्य नहीं, वह व्यक्ति-विशेष सामने लाता है जाति नहीं। यह व्यक्ति विशेष (आलंबन) सह्रदय के मन में वह मूर्ति केवल व्यक्ति विशेष की ही होगी, पर वह मूर्ति ऐसी होगी जो प्रस्तुत भाव का आलंबन हो सके जो उसी भाव को सह्रदय में भी जगाये जिसकी व्यंजना आश्रय अथवा कवि करता है इससे सिद्ध हुआ कि साधारणीकरण आलंबनत्व धर्म का होता है''

इस प्रकार साधारणीकरण मूलतः आलंबन के उन गुणों का होता है जो संबद्ध भाव की जाग्रति में कारण है वस्तुतः सीता का सीतात्व नष्ट नहीं होता, लेकिन वे अपने ऐसे सामान्य गुणों के कारण केवल राग की ही नहीं वरन् संपूर्ण सह्रदय समाज के अनुराग की भाजन बन जाती है। वस्तुतः सीता के उन गुणों के कारण सह्रदय अपने प्रणय पात्र को वहां आरोपित कर देता है। 'सीता' वहां आलंबन न रहकर 'आलंबन धर्म' रह जाती हैं।

पं. केशव प्रसाद मिश्र का साधारणीकरण

पं. केशव प्रसाद मिश्र की साधारणीकरण विषयक मान्यता का उल्लेख बाबू श्याम सुंदर दास ने 'साहित्यालोचन' में निम्न प्रकार किया -

'कवि के समान ह्रदयालु सह्रदय भी जब उसी भूमिका मधुमति, भूमिका, जहाँ पहुँचा कवि का मन उल्लेखित होककर नवीन सृष्टि का आरंभ करता है, और अपनी ही सृष्टि की सुंदरता पर मुग्ध होकर रीझता है एवं जिसमें उसकी समस्त वृत्तियाँ एक तान एक लय हो जाती है का स्पर्श करता है, तब उसकी वृत्तियाँ उसी प्रकार एकतान, एक लय हो जाती है। जिसके लिए पारिभाषिक शब्द साधारणीकरण है।

आचार्य बाजपेयी का साधारणीकरण

आचार्य नंद दुलारे बाजपेयी जी ने बाबू श्याम दास की साधारणीकरण विषयक मान्यता को स्वीकार करते हुए उसमें कुछ परिष्कार किया है। उनका मत है कि -

'साधारणीकरण वास्तव में कवि कल्पित समस्त व्यापार का होता है केवल किसी पात्र विशेष का नहीं साधारणीकरण का अर्थ रचयिता और उपभोक्ता के मध्य भावनात्मक तादात्म्य ही है।''

डॉ. नगेन्द्र का साधारणीकरण

डॉ. नगेन्द्र अपनी पुस्तकों 'रीतिकाव्य की भूमिका' तथा 'रस सिद्धांत' में निष्कर्ष रूप में पं. केशव मिश्र तथा बाबू श्याम सुंदर दास का अनुशरण करते हैं तथा शब्द भेद के साथ कवि के भाव तादात्म्य के स्थान पर कवि की अनुभूति के साधारणीकरण का नारा बुलंद करते हैं। डॉ. नागेन्द्र ने साधारणीकरण विषयक अपना मत निम्न प्रकार व्यक्त किया है -

''अतएव निष्कर्ष यही निकला कि साधारणीकरण कवि की अपनी अनुभूति का होता है अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है कि वह सभी के ह्रदयों में समान अनुभूति जगा सके तो पारिभाषिक शब्दावली में हम कहते हैं कि उसमें साधारणीकरण की शक्ति वर्तमान है।'' [12] जिसे हम आलंबन कहते हैं वह कवि की अनुभूति का संवेद्य रूप है उसके साधारणीकरण का अर्थ है कवि की अनुभूति का साधारणीकरण अर्थात् कवि की अनुभूति के स्तर पर ही उसका साधारणीकरण हो जाता है।

साधारणीकरण के समतुल्य अन्य पाश्चात्य सिद्धांत

साधारणीकरण के क्षेत्र में न सिर्फ भारतीय काव्य शास्त्रीय सिद्धांत बल्कि पाश्चात्य काव्य सिद्धांत भी समन्वय करते प्रतीत होते हैं। साधारणीकरण के संदर्भ को लेकर विभिन्न पाश्चात्य सिद्धांतों का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है -

अनुकृतिवाद

कला में अनुकृतिवाद के प्रतिष्ठापक आचार्य प्लेटो के अनुसार उनके सिद्धांत में जो विशेष है वह यह है कि कवि ही सर्वप्रथम अपने काव्य में निहित पात्रों के साथ तादात्म्य स्थापित करता है, फिर वही अपने पाठकों या प्रमाताओं को उसी प्रक्रियागत तादात्म्य को आत्मसात करने की प्रेरणा देता है।

इसी प्रकार कहा जाता है कि काव्य सत्य के सर्वमान्य रूप का विश्लेषण करते समय अरस्तु ने प्रकारांतर से भारतीय काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध सिद्धांत, 'साधारणीकरण' का संकेत किया है। वस्तुतः साधारणीकरण की समस्या यही है कि एक की भावाभिव्यक्ति सर्वसाधारण के लिए अस्वाद्य किस प्रकार बन जाती है। अरस्तु ने भी काव्य लक्ष्य विशेष की अनुभूति को सर्वसाधारण की अनुभूति बना देना ही माना है। इफिगोतिआ की कथा का उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया है कि कवि को इस कथा के विशिष्ट नाम एवं व्यक्तियों को पृष्ठभूमि में रखकर सहज मानव अनुभूति के विषयों को उभारना चाहिए जो सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक होने के कारण सर्वसंबद्ध हो सकते हैं। इस प्रकार अरस्तु ने कवि कर्तव्य को विवेचित करते हुए साधारणीकरण का समर्थन किया है।

लौजाइनस ने उदात्तता को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है उन्होंने 'उदात्तता' को अभिव्यंजना की श्रेष्ठता तथा विशिष्टता माना है, जिसके कारण महानतम कवि एवं इतिहास वेत्ता की उपाधि प्राप्त कर अमर

यश के भागी बने हैं। 'उदात्त' का लक्ष्य केवल श्रोताओं को आनंद प्रदान करना नहीं है अपितु उन्हें किसी मंत्र शक्ति की भांति अनिवार्य रूप से अपने से उठाकर अनंदातिरेक की अवस्था में पहुँचा देना है, स्पष्ट है कि लोंजाइनस उदात्त तत्व को सामाजिक या सहृदय में प्रेषणीय बताते हैं, उनका मत है कि 'उदात्त' तत्व में अपरिमित शक्ति होती है जो श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर देती है - ''जो उचित समय में प्रयुक्त तत्व की झलक की चमक की भांति प्रत्येक वस्तु को अपने सम्मुख छितरा देती है तथा एक ही प्रहार में वक्ता की समस्त शक्ति को खोलकर रख देती है।'' [13] अतएव लोजाइनस भी कवि की अनुभूति का व्यक्ति के साथ सामाजिक के तादात्म्य पर बल देकर साधारणीकरण सिद्धांत का समर्थन करते हैं। वे साहित्य की उत्कृष्टता की एक मात्र कसौटी सर्वयुगीन आनंदात्मता को मानते हैं।

विलियम वर्ड्सवर्थ स्वच्छन्दतावादी या रोमानी काव्य युग के प्रर्वतक के रूप में प्रसिद्ध हैं। काव्य को पारिभाषित करते हुए वर्ड्सवर्थ ने उसकी सहजता के साथ चिंतन एवं मननशीलता को पर्याप्त महत्वपूर्ण माना है।'' कवि मानवीय मनोभावों के अनुरूप ही सोचता है और अनुभव करता है ..... लेकिन कवि कवियों के लिए नहीं लिखते, जन साधारण के लिए लिखते हैं। प्रारंभ में कवि को किसी वस्तु का इन्द्रिय बोध होता है, तदुपरांत वस्तु के अप्रत्यक्ष होने पर, शांति के क्षणों में वह उस भाव पर विचार करता है जो वस्तु को देखने पर उसके, मन में जाग्रत हुआ था और विचार करने पर धीरे-धीरे उस मूल भाव के सदृश भाव जाग्रत होता है। इसे ही कवि व्यक्त करता है और कविता का जन्म होता है। जब कवि काव्य रचना करता है तो वह क्षण उसके जीवन का चरम क्षण होता है। ऐसे ही क्षण में जब वह अपने तीन भावों का उच्छलन काव्य के माध्यम से करता है, तो वह पाठक को वही अनुभूति प्रदान करता है, उसे भी उस स्थिति में ले जाता है, जिसका अनुभव वह स्वयं कर चुका होता है और इसी में उसकी सफलता का रहस्य है।'' [14] अतएव वर्ड्सवर्थ भी कवि तथा सामाजिक या सहृदय के तादात्म्य की बात करते हैं जो साधारणीकरण का मूलाधार है।

प्रसिद्ध आलोचक, कवि एवं नाटककार टी.एस. इलियट साहित्य को सर्वोपरिता प्रदान करते हुए कला को 'निर्वेयक्तिक' घोषित करते हैं वे कवि को एक माध्यम के रूप में स्वीकार करते हैं तथा उसके मस्तिष्क को एक ऐसा ग्रहण यंत्र मानते हैं जो अगणित अनुभूतियों, वाक्यांशों तथा बिंबों को जमा करता है। उनका मत है कि ''कलाकार की प्रगति निरंतर आत्म त्याग एवं व्यक्तित्व का बहिष्कार है, अभिप्राय यह है कि परंपरा के विकास में योग देते समय कवि अपने व्यक्तित्व का परित्याग करता जाता है और अपने व्यक्तित्व को काव्य में से बहिष्कृत करता है, कला व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि उससे पलायन है, परंतु वास्तव में जिनके पास व्यक्तित्व एवं भाव है, वे ही जान सकते हैं कि उनसे पलायन करने का क्या अर्थ होता है।'' [15] यहाँ इलियट का मत भट्ट नायक के व्यक्ति विशेषांश के परिहार का प्रतिबिंब दिखायी देता है।

फ्रायड कला के उदात्तीकृत रूप को एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानते हैं। ''वस्तुतः अचेतन पापानुभूति, उसका प्रकाशन और समान भूमि पर आधारित उसका भाव विनियोग फ्रायडीय कला सिद्धांत के प्रमुख तत्व हैं, तथा फ्रायड कला में संप्रेषण को महत्वपूर्ण मानकर साधारणीकरण की आवश्यकता पर बल देते हैं। इस प्रकार उनका विचार है कि एकांतिक दिवास्वप्न कला की प्रेषणीयता में बाधक है और कलाकार को उन्हीं दिवा स्वप्नों को अपनी रचना में प्रयोग करना चाहिए जो सभी व्यक्तियों में सामान्य होते है।'' [16] फ्रायड के मतानुसार काव्य के व्यक्त रूप को भोगता हुआ सामाजिक विषय के साथ तादात्म्य स्थापित करता है और अपनी तन्मयता में काव्यार्थ के भीतर संविभागी कवि के साथ सर्व सामान्य तादात्म्य दशा को पहुँचता है।'' [17]

इस प्रकार हम देखते हैं कि साधारणीकरण द्वारा प्रमाता या सामाजिक आश्रय के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर अपनत्व और परत्व के भावों से ऊँचा उठ जाता है, और स्वयं को रस दशा के सागर में डूबा हुआ सा पाता है। चाहे वह भारतीय काव्यशास्त्रियों की साधारणीकरण प्रक्रिया हो या पाश्चात्य आचार्यों की तादात्म्य स्थापना दोनों ही परिणामतः रस का, उसके भावों का सरलीकरण कर प्रमाता को उसमें विभोर करने में सर्वथा समर्थ है। उनमें भले ही चिंतन या मनन की भिन्न प्रक्रियायें अपनायी जाये, दोनों की मंजिल एक ही है गंतव्य एक ही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. रस-सिद्धांत - डॉ. नागेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
2. रस-प्रक्रिया - डॉ. शंकरदेव अवतरे, दी मेकमिलन कंपनी आफ इण्डिया लिमि., दिल्ली
3. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. राजकिशोर सिंह, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ
4. रस सिद्धांत: स्वरूप विश्लेषण - डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
5. भारतीय तथा पाशचात्य काव्य षास्त्र का संक्षिप्त विवेचन- डॉ. सत्यदेव चैधरी, डॉ. षांतीस्वरूप चैधरी, राधा पब्लिकेषन
6. पाशचात्य काव्य षास्त्र- देवेन्द्र नाथ षर्मा, मयूर बुक्स
7. भारतीय व पाशचात्य काव्यषास्त्र तथा हिन्दी आलोचना-रामचन्द्र तिवारी, विष्वविद्यालय प्रकाषन, वाराणसी
8. भारतीय एवं पाशचात्य काव्य सिद्धांत (ईबुक)-गणपती चंद्र गुप्त
9. भारतीय एवं पाशचात्य काव्यषास्त्र - डॉ. विवेक षंकर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी